प्रेमचंद और हमारा समय

नीलम कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दिल्ली विश्वविद्यालय के राजधानी कॉलेज में एन.सी.डब्लू.ई.बी.

सारांश
इस आलेख में प्रेमचंद तथा उनकेसाहित्य को कोरोनाकाल से जोड़कर देखने का प्रयास किया गया है।महामारी के विरुद्ध चिकित्सकों और समाजसेवकों का संघर्ष तथा उनके महत्व को रेखांकित किया गया है जिसमें अपने कर्तव्य से भागने वाले चिकित्सकों तथा समाजसेवकोंका भी वर्णन किया गया है। रोटी, कपड़ा और मकान के लिए तरसते मज़दूरों की समस्या हमारे समय की समस्याओं से एकमेक होती नज़र आती है। शिक्षा और रोज़गार प्रेमचंद के बाद भी आम आदमी के लिए अहम मुद्दा बना रहा। जातिगत भेदभाव, स्त्रियों की शिक्षा, सत्ता का भ्रष्ट चरित्र इत्यादि के साथ-साथ प्रेमचंद किसान जीवन का चित्रांकन भी अपने लेखन में किया हैजिसे आज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा जा सकता है।प्रेमचंद ने साहित्य और पत्रकारिता के लिए सत्ता और पूँजीपतियों को खतरे के रूप में देखा। भाषा का मुद्दा वैश्विक समस्या के रूप में प्रमचंद और हमारे समय का महत्वपूर्ण विषय है। उपरोक्त विषयों को प्रेमचंद के साथ-साथ हमारे समय से भी जोड़कर इस लेख में देखा गया है।

बीजशब्द
कोरोनाकाल, विमुद्रीकरण, बीप, मॉब लिंचिंग।

२०२० ई. दुनिया की सबसे प्रभावी घटना कोरोना महामारी का प्रसार और उसके खिलाफ मानव की अदम्य जिजीविषा का अनवरत संघर्ष बन गई है। ऐसे में साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, सामंतवाद, पितृसत्ता, धर्मसत्ता, राजसत्ता आदि के शोषण के विरुद्ध सच्चाई की मशाल जलाने वाले प्रेमचंद साहित्य की ओर उम्मीद भरी निगाहों का आकर्षण स्वाभाविक है। यह देखकर बड़ा सुकून मिलता है कि स्वास्थ्य, शिक्षा, रोटी, पानी, स्वतंत्रता, समानता, गरिमामय जीवन आदि की कर्मभूमि में प्रेमचंद आज भी किसी गुरु की तरह हमारा मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं।

कोरोना महामारी की भयावहता ने अनायास ही दुनिया का ध्यान लगभग एक सदी पूर्व, प्रथम विश्वयुद्ध के बाद, फैली महामारी स्पेनिश फ्लू की ओर खींच लिया। फरवरी १९१८ से अप्रैल १९२० के बीच चार लहरों में फैली इस महामारी ने दुनिया की तिहाई आबादी को अपनी चपेट में ले लिया था। महामारी से सबसे बुरी तरह प्रभावित होने वाला देश भारत था जहां लगभग डेढ़ करोड़ लोग मारे गए थे। इन्हीं दिनों प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम' लिख रहे थे। प्रेमाश्रम में इस बीमारी का नाम अज्ञात है लेकिन उसकी तबाही कोरोना द्वारा मुंबई में फैलाई गई तबाही जैसी ही भयानक है। 'प्रेमाश्रम' के लखनपुर में महामारी के कारण हुई तबाही का उल्लेख करते हुए कादिर प्रेमशंकर से बीमारी के संबंध में कहता है- "सरकार, कुछ न पूछिए कम तो न हुई और बढ़ती जाती है। कोई दिन नागा जाता कि एक-न-एक घर पर बिजली न गिरती हो। नदी यहाँ से छः कोस है। कभी-कभी तो दिन में दो-दो, तीन-तीन बेर जाना पड़ता है।" लखनपुर की तबाही केवल स्पेनिश फ्लू की तबाही की याद से ही नहीं जुड़ती बल्कि वह आज की तबाही से भी जुड़ जाती है।

महामारी के विरुद्ध चिकित्सकों तथा समाजसेवकों का संघर्ष उनके महत्व को नए सिरे से स्थापित करता है। 'गोदान' में गोबर के बालक मंगल को चेचक होने पर मालती की सक्रियता और सेवाभाव चिकित्सकों के लिए मार्गदर्शक होने की योग्यता रखता है। मालती ने न केवल मंगल को सीलन भरी कोठरी से निकालकर अपने साफ-सुथरे आरामदायक बैठक में रहने की सुविधा दी बल्कि रात-रात भर जागकर उसकी देखभाल की। प्रेमचंद मालती को चेचक से लड़कर पराए शिशु को भी मृत्यु के मुँह से बाहर लाने वाले रूप में चित्रित करते हुए लिखते हैं कि-"रात को बच्चे का ज्वर तेज हो जाता और वह बेचैन होकर दोनों हाथ ऊपर उठा लेता।

मालती उसे गोद में लेकर घंटों कमरे में टहलती। चौथे दिन उसे चेचक निकल आई। मालती ने सारे घर को टीका लगाया, खुद को टीका लगवाया, मेहता को भी लगा। गोबर, झुनिया, महराज कोई न बचा। पहले दिन तो दाने छोटे थे और अलग-अलग थे। जान पड़ता था, छोटी माता है। दूसरे दिन दाने जैसे खिल उठे और अंगूर के दानों के बराबर हो गए और फिर कई-कई दाने मिलकर बड़े-बड़े आंवले जैसे हो गए। मंगल जलन और खुजली और पीड़ा से बेचैन होकर करुण स्वर में कराहता और दीन, असहाय नेत्रों से मालती की ओर देखता। उसका कराहना भी प्रौढ़ों का-सा था, और दृष्टि में भी प्रौढ़ता थी, जैसे वह एकाएक जवान हो गया हो। इस असह्य वेदना ने मानों उसके अबोध शिशुपन को मिटा डाला हो। उसकी शिशु-बुद्धिमानों सज्ञान होकर समझ रही थी कि मालती ही के जतन से वह अच्छा हो सकता है। मालती ज्यों ही किसी काम से चली जाती, वह रोने लगता। मालती के आते ही चुप हो जाता। रात को उसकी बेचैनी बढ़ जाती और मालती को प्राय: सारी रात बैठना पड़ जाता, मगर वह न कभी झुंझलाती, न चिढ़ती।" १५ दिनों के मालती के संघर्ष ने मंगल को निरोग कर दिया। मेहता ने और उनके जरिए प्रेमचंद ने ऐसे चिकित्सक में देवी का उज्ज्वल स्वरूप देखा जो आज के कर्मठ चिकित्सकों के समर्पण और त्याग के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने का मार्ग होने की संभावना रखता है।

प्रेमचंद अपने समय में समाज के विभिन्न पक्षों को देख पाने में समर्थ थे। इसलिए उनका साहित्य हमारे समय के समाज के विभिन्न पक्षों के साथ सरोकार बिठाने में समर्थ हो सका है। महामारी के दौरान अपने कर्तव्य से भागने वाले चिकित्सकों और समाजसेवकों का स्वार्थी रुख कोरोना काल में भी सामने आया है। प्रेमचंद की 'उपदेश' और 'मंत्र' जैसी कहानियों में भी यह रूप चित्रित हुआ है। 'उपदेश' के शर्मा जी प्लेग के समय शहर से अपने गाँव भाग जाने वाले समाजसेवक हैं। कहानी में उनका चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि-"एक बार प्रयाग में प्लेग का प्रकोप हुआ। शहर के रईस लोग निकल भागे। बेचारे गरीब चूहों की भाँति पटापट मरने लगे। शर्माजी ने भी चलने की ठानी। लेकिन "सोसल सर्विस लीग" के वे मन्त्री ठहरे। ऐसे अवसर पर निकल भागने में बदनामी का भय था। बहाना ढूंढा।... इस शुभ कार्य में मैं तुम्हारा हाथ बटा सकता, पर आज ही देहातों में भी बीमारी फैलने का समाचार मिला है। अतएव मैं यहां का काम आपके सुयोग्य, सुदृढ हाथों में सौंपकर देहात में जाता हूँ कि यथासाध्य देहाती भाइयों की सेवा करूँ।"

प्रेमचंद अपने समय में समाज के विभिन्न पक्षों को देख पाने में समर्थ थे। इसलिए उनका साहित्य हमारे समय के समाज के विभिन्न पक्षों के साथ सरोकार बिठाने में समर्थ हो सका है। महामारी के दौरान अपने कर्तव्य से भागने वाले चिकित्सकों और समाजसेवकों का स्वार्थी रुख कोरोना काल में भी सामने आया है। प्रेमचंद की 'उपदेश' और 'मंत्र' जैसी कहानियों में भी यह रूप चित्रित हुआ है।

प्रेमचंद ऐसे यशलोभी और कर्तव्यच्युत समाजसेवकों और चिकित्सकों को अपनी कहानियों में आईना दिखाते हैं। 'उपदेश' में शर्माजी के समक्ष बाबूलाल है तो 'मंत्र' में डॉक्टर चड्ढा के समक्ष बूढ़ा भगत। बूढ़ा, डॉक्टर के सामने गिड़गिड़ाता है कि वे उसकी एकमात्र संतान पन्ना को बचा लें किंतु डॉक्टर साहब को बस इतना याद था कि वे इस समय मरीज नहीं देखते, यह उनके गोल्फ खेलने का समय है। डॉक्टर साहब द्वारा बूढ़े के प्रति अपनाए गए रवैये को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद आहत हृदय से लिखते हैं कि-"संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य-संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिये सदैव तैयार रहते थे। जब तक बूढ़े को मोटर दिखाई दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी।" हमारे समय का मनुष्य भी कम कठोर हृदय नहीं है। भागमभाग में किसी के पास इतना भी वक्त नहीं कि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को अस्पताल तक पहुँचा दे।

समय का पहिया ऐसा घूमा कि डॉक्टर साहब का सामना सीधे अपने अतीत के कर्म से हुआ। उनके बेटे कैलाशनाथ की सर्पदंश के कारण हुई मृत्यु से वही बूढ़ा भगत उबार लाया। प्रेमचंद आदर्शोन्मुख यथार्थवादी लेखक थे। वे यहाँ भी आदर्श रचना नहीं भूले। बूढ़े के कर्म ने डॉक्टर को अपनी भूल का एहसास करा दिया। उसने स्वयं को बदलने का फैसला करते हुए कहा-"एक बार यह एक मरीज़ को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज़ को देखने से इनकार कर दिया था। आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह

कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ।...उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अबसे जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा।" कर्तव्य से भागने की समस्या केवल एक व्यक्ति या एक वर्ग की नहीं है। कोरोनाकाल ने सभी चिकित्सकों पर जीवनरक्षण का अभूतपूर्व भार डाल दिया है। इस दायित्व को निभाते हुए कई चिकित्सकों की संक्रमण के कारण जान तक चली गई है। किंतु उनके त्याग में साथ देने के बजाय कई मकान-मालिकों ने कोरोना होने के भय से अपने किरायेदार चिकित्सकों को घर खाली करने का फरमान दे दिया है। कोरोना से दूसरों के प्राण बचाने में अपनी जान गँवाने वाले चिकित्सकों तक को संक्रमण के भय से श्मशान में शवदाह से कुछ लोगों ने आपत्ति की। १५ अप्रैल २०२० में 'द वायर' में प्रकाशित लेख 'चेन्नई:कोरोना वायरस से जान गंवाने वाले डॉक्टर का अंतिम संस्कार स्थानीय लोगों ने रोका' में छपी खबर के अनुसार-"पुलिस ने मंगलवार को बताया कि एक निजी अस्पताल में सोमवार को 56 वर्षीय एक डॉक्टर की मौत हो गई थी. डॉक्टर के शव को अम्बत्तूर क्षेत्र में श्मशान घाट ले जाया गया जहां स्थानीय लोगों ने इसका विरोध किया और कहा कि इससे उनके क्षेत्र में कोरोना वायरस का संक्रमण फैलने की आशंका है." जिस डॉक्टर ने इस भीषण समय में लोगों को इलाज किया उसे अंतिम संस्कार तक मयस्सर नहीं। भारत के कई शहरों में ऐसी घटनाएँ देखी जा रही हैं।प्राणों के भय से क्रूर हुए समाज में मानवता की रक्षा के लिए प्रेमचंद का आस्था और आदर्श से भरपूर साहित्य संजीवनी हो सकता है।

'प्रेमचंद और उनका युग' लिखकर रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद को १९७२ ई. के भारत के लिए अनिवार्य सिद्ध किया था। वे कसौटियाँ २०२० ई. में भी हमारे समाज को आईना दिखा सकती है। उनका यह कहना आज भी उतना ही सही है कि-"जिस पिछड़ेपन के विरुद्ध प्रेमचंद ने संघर्ष किया था, वह विशेष रूप से हिन्दी प्रदेश में सघन हो गया है। आर्थिक स्तर पर जनता की गरीबी अपनी जगह है, राजनीतिक स्तर पर देश के विघटन की समस्या और तीव्र हो गयी है। सांस्कृतिक स्तर पर द्विज और शूद्र का भेद, हिन्दू और मुसलमान का भेद, और बढ़ा है। पुराने भेदों में इजाफा हुआ है हिन्दू और सिख के भेद का। धार्मिक अंधविश्वासों को उभारने में, बड़े पैमाने पर हत्याकाण्ड रचाने में, जनता को तरह-तरह से आतंकित करने में 1992 और 93 के वर्षों ने पुराने सभी युगों को पीछे छोड़ दिया है। प्रेमचंद का साहित्य इस परिस्थिति को समझने में सहायता करता है।"

रोटी, कपड़ा और मकान प्रेमचंद के जीवन काल से लेकर आज तक करोड़ों लोगों की समस्या का कारण बना हुआ है। जीवन की इन मूलभूत जरूरतों पर प्रेमचंद की पैनी दृष्टि थी। १९१२ ई. में प्रकाशितउनकी कहानी 'राजहठ' में राजकुमार इंदर दुर्गापूजा में अपने पिता को राजनीतिक दल पर लाखों रुपये खर्च करने से रोकता है क्योंकि दूसरी ओर प्रजा भूख से बेहाल है। वह कहता है-"यह न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ़ बात है कि हम तो उत्सव मनाएँ और हजा़रों आदमी उसकी बदौलत मातम करें। बीस हजार मजदूर एक महीने से मुफ़्त में काम कररहेहैं, क्या उनके घरों में खुशियाँ मनाई जा रही हैं?" रोटी ही नहीं पानी भी हमारे समय की एक भीषण समस्या है जो कि 'राजस्थान की रजत बूँदें' में उभरकर सामने आई है-"खंडेरों की ढाणी जैसे कई गांवों को आज एक नए बने ट्यूबवैल से पानी मिल रहा है। पानी 60 किलोमीटर दूर से पाइप लाइन के माध्यम से आताहै। ट्यूबवैल जहां खोदा गया है, वहां बिजली नहीं है।वह डीजल से चलता है।डीजल और भी कहीं दूर से टैंकर के जरिए आता है। कभी टैंकर के ड्राइवर छुट्टी पर चले जाते हैं, तो कभी ट्यूबवैल चलाने वाले।कभी डीजल ही उपलब्ध नहीं होता।उपलब्ध होने पर उसकी चोरी भी हो जाती है।कभी रास्ते में पाइप लाइन फट जाती हैं-इस तरह के अनेक कारणों से ऐसे गांवों में पानी पहुंचता ही नहीं है।" पानी की समस्या के विकराल स्वरूप को प्रेमचंद ने 'ठाकुर का कुआँ' में चित्रित किया जो छुआछूत के साथ मिलकर जानलेवा हो जाती है।

शिक्षा और रोजगार साथ-साथ चलते हैं। शिक्षा का रोजगार से या रोजगार का शिक्षा से क्या संबंध है इसपर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि-"देश में आधे आदमी बेकार पड़े हुए हैं। सौ में नब्बे आदमियों को पेट भर भोजन नहीं मिलता। सौ में नब्बे आदमी पढ़ लिख नहीं सकते, इसलिए वो जो थोड़ा-बहुत कमाते भी हैं उन्हें निश्चिंत होकर खानहीं सकते। कहीं साहूकार उनके मुँह का कोर छीन लेता

शिक्षा और रोजगार साथ-साथ चलते हैं। शिक्षा का रोजगार से या रोजगार का शिक्षा से क्या संबंध है इसपर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंद लिखते हैं कि-"देश में आधे आदमी बेकार पड़े हुए हैं। सौ में नब्बे आदमियों को पेट भर भोजन नहीं मिलता। सौ में नब्बे आदमी पढ़ लिख नहीं सकते, इसलिए वो जो थोड़ा-बहुत कमाते भी हैं उन्हें निश्चिंत होकर खानहीं सकते। कहीं साहूकार उनके मुँह का कोर छीन लेता है कहीं पुलिस।"

है कहीं पुलिस।" अशिक्षा के अंधेरे को दूर करने का दायित्व संभालने वाले स्कूलों की बदहाल स्थिति का प्रेमचंद ने जो चित्र खींचा है वह आज के बहुतेरे स्कूलों की भी हकीकत है। 1936 में प्रकाशित होली की छुट्टी के द्वारा प्रेमचंद शिक्षा-व्यवस्था का वास्तविक चेहरा समाज को दिखाते हैं हमारे देश के शिक्षकों के बड़े हिस्से की यही हालत है। पर्याप्त वेतन का अभाव, शिक्षकों पर अत्यधिक कार्य-भार को प्रेमचंद ने शिक्षकों के इस व्यवहार का मूल कारण माना. हमारे समय के इस कोरोना काल में सारी कक्षाएँ डिजिटल माध्यम से ली जा रही हैं किंतु यह अध्यापकों पर अत्यधिक कार्यभार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अतिथि शिक्षकों के वेतन का आधा हिस्सा कम करके उन्हें वेतन दिया जा रहा है। उन्हें डिजिटल माध्यम से निर्धारित कक्षाएँ तो लेनी हैं लेकिन शिक्षकों के लिए कोई सुविधा नहीं दी जा रही है। यह प्रेमचंद के समय का सच नहीं है किंतु हमारे समय का सच जरूर है। इसके केंद्र में निहित है शिक्षा के प्रति राजसत्ता की उपेक्षा जिसका सिलसिला प्रेमचंद के दौर से आज तक बदस्तूर जारी है। जातिगत भेदभाव ने शिक्षा के क्षेत्र में भी अपने पैर फैलाए हैं। आज भी जाति शिक्षा पर उसी तरह से हावी है जैसे प्रेमचंद के समय में थी। चमार होने के कारण 'कर्मभूमि' में गूदड़ चौधरी के गाँव के बालक को इस कदर अपमानित किया जाता है कि वे पढ़ने की इच्छा होने पर भी पढ़ना छोड़ देते हैं या कहें कि वे मजबूर हो जाते हैं। उनकी इस मजबूरी को रेखांकित करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं- "कहाँ जाएं, हमें कौन पढ़ाए-मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा दोनों को लेकर गए थे। पंडितजी ने नाम लिख लिया पर हमें सबसे अलग बैठाते थे सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।" आज भी स्थितियाँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं जिसका पता ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि दलित लेखकों की 'जूठन' जैसी आत्मकथाएँ देती हैं।

'बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ' जैसे अभियान हमारे समय में स्त्री संरक्षण के कवच के रूप में अपनाए जा रहे हैं। स्त्री-शिक्षा को अनिवार्य समझने वाले प्रेमचंद 'गबन' (१९२८) में मानो स्वयं वकील इंदुभूषण के रूप में रमानाथ से पूछते हैं कि-"आपके बोर्ड में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा? और कई बोर्डों ने तो पास कर दिया। जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार न होगा। आप तो यूरोप न गए होंगे? ओह! क्या आजादी है, क्या दौलत है, क्या जीवन है, क्या उत्साह है! बस मालूम होता है, यही स्वर्ग है और स्त्रियाँ भी सचमुच देवियां हैं। इतनी हंसमुख, इतनी स्वच्छंद, यह सब स्त्री-शिक्षा का प्रसाद है!" हमारा समय जैसे प्रेमचंद के स्त्री-शिक्षा संबंधी स्वप्न को साकार रूप में देखने का समय है। प्रेमचंद ने स्त्री-जीवन के कई पक्षों को उसकी समस्याओं सहित उजागर किया है। जैसे-'सेवासदन' में दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, स्त्री-पराधीनता, 'निर्मला' में अनमेल विवाह, 'प्रतिज्ञा' में विधवा जीवन, 'कर्मभूमि' में आदर्श पत्नी, देशभक्त स्त्री तथा 'गोदान' में कर्मण्य स्त्री के स्वाभिमानी चरित्र के साथ दलित स्त्री के जीवन की विडंबनाओं का चित्र खींचा है। सेवासदन की सुमन के पिता कृष्णचंद्र दहेज-प्रथा के खिलाफ थे किंतु बेटी के विवाह की चिंता से घिरे दरोगा साहब रिश्वत लेने के लिए राजी हो जाते हैं। रिश्वत लेना उनके लिए अपनी आत्मा बेचने के समान था। सांसारिकता को निभाने के लिए वे विवश थे-"मैं अपनी आत्मा बेच रहा हूँ,कुछ लूट नही रहा हूँ।" पिता को पाँच साल की जेल और बेटी का विवाह अधेड़ वय के व्यक्ति से हुआ। गजाधर के संदेह ने सुमन को भोली के पास पहुँचा दिया जहाँ उसने वेश्या का जीवन अपना लिया। विधवा जीवन की विडंबनाओं को प्रेमचंद ने 'गबन' में जगह दी है। उपन्यास में वकील शांति भूषण की मृत्योपरांत उसका भतीजा मणि भूषण उसकी सारी संपत्ति पर अपना कब्जा कर लेता है और रतन को अपने ही घर से बेघर होने पर मजबूर किया जाता है।

प्रेमचंद के समय की ही तरह हमारे समय में भी अनेक विधवा स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। ऐसी स्त्रियों की सुरक्षा के लिए उनके संपत्ति पर अधिकार संबंधी कानून बनाए गए हैं। सुखदा के रूप में प्रेमचंद ने स्त्री को चहारदीवारी से बाहर लाने का प्रयास किया, उसे पुरुषों के बराबर काम करने का साहस दिया। 'गोदान' की धनिया का संवाद एक प्रबल तथा स्वाभिमानी स्त्री होने का संकेत देता है वह दातादीन से कहती है-"भीख मांगो तुम, जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहां काम करेंगे, वही चार पैसे पाएंगे।" प्रेमचंद अपने समय से आगे की सोच रहे थे। हमारा समय उन बातों का अमल है। आज स्त्री-पुरुष साथ-साथ एक ही दफ्तर में काम करते हैं, सह-शिक्षा पाते हैं। बावजूद इसके अभी भी कई दफ्तरों में स्त्रियों को पुरुषों के मुकाबले कम वेतन दिया जाता है। देर रात तक काम करना उनकी असुरक्षा का कारण बन गया है। घरेलू हिंसा, अपहरण, बलात्कार तथा हत्या जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं। 'निर्भया कांड' इसका जीवंत उदाहरण है। यह संपूर्ण भारत तथा उसकी व्यवस्था को हिला देने वाली घटना थी जिसमें एक स्त्री की निर्मम हत्या की गई। दिल्ली में हुई इस घटना के बाद स्त्रियों के प्रति बढ़ते अपराध को रोकने के लिए "मिनिस्ट्री ऑफ आईटी ने महिला सुरक्षा से कई गैजट बनाने की शुरूआत की जो जल्द ही बाजार में आएंगे।महिला बाल विकास मंत्रालय ने महिला सुरक्षा के लिए 24 घंटे हेल्प लाइन नंबर की शुरूआत की। सरकार ने महिला बैंक की शुरूआत की।" इनके बावजूद स्त्रियों की असुरक्षा का बना रहना प्रेमचंद के नायिकाओं की जरूरत रेखांकित करता है। यूँ तो हम आजाद भारत के वासी हैं जो संवैधानिक रूप से धर्मनिरपेक्ष है किंतु प्रेमचंद ने धार्मिक असहिष्णुता के कारण समाज में बनी जिस खाई को पाटने की कोशिश की है वह आज भी उतनी ही गहरी है। कभी बीप तो कभी मौब लिंचिंग जैसे मामलों ने इस खाई को और अधिक गहरा बना दिया है।

इन भीड़वाले शहरों में यदि कोई रहने के लिए मकान ढूँढ़ने निकले तो पहला प्रश्न उसके सामने यही दागा जाता है कि वह मुसलमान तो नहीं है? यदि है तो उसके लिए कोई मकान खाली नहीं मिलेगा। एक सच यह भी है कि यह काम शासनतंत्र का है। अंग्रेजों के जाने के बाद 'फूट डालो शासन करो' की उनकी नीति यहाँ अपना ली गई। रामविलास शर्मा का मत है कि-"प्रेमचंद का समाज हिन्दुत्व और इस्लाम द्वारा विभाजित नहीं है।" किंतु हमारा समाज तो हिंदू और मुसलमान का भेद करता नहीं थकता। मॉब लिंचिंग जैसी घटना का इतिहास बहुत पुराना है अगस्त 1947 को जब देश आजाद हुआ और भारत-पाकिस्तान दो अलग-अलग मुल्क बने, तब पहली बार मॉब लिंचिंग कहलाने वाली हिंसा का जन्म हुआ। वह वक्त था जब कभी एक समुदाय की भीड़ दूसरे समुदाय के लोगों को मारती। तो कभी, भीड़ लोगों की जान लेती। इसके बाद 1984 के सिख दंगे, 2002 के गुजरात दंगे और हाल ही में दिल्ली में भड़की हिंसा।" प्रेमचंद कर्मभूमि, मंदिर और मस्जित आदि रचनाओं में इस हिंसा का चित्रण करते हैं और उसके खिलाफ खड़े होते दिखाई पड़ते हैं।

प्रेमचंद ने सत्ता का विभाजनकारी चरित्र पहचाना था और अपनी लेखनी द्वारा जनता को उससे निरंतर सचेत किया था। वे लिखते हैं कि-"राजनीति के पण्डितों ने कौम को जिस दुर्दशा में डाल दिया है, वह आप और हम सभी जानते हैं। अभी तक साहित्य के सेवकों ने भी किसी-न-किसी रूप मे राजनीति के पण्डितों को अगुआ माना है, और उनके पीछे-पीछे चले हैं। मगर अब साहित्यकारों कोअपने विचार से काम लेना पड़ेगा। सत्य, शिवं, सुन्दर के उसूल को यहाँ भी बरतना पड़ेगा। सियासियात ने सम्प्रदायो को दो कैम्पो में खड़ा कर दिया है। राजनीति की हस्ती ही इस पर कायम है कि दोनों आपस मे लड़ते रहे। उनमें मेल होना उसकी मृत्यु है। इसलिए वह तरह-तरह के रूप बदलकर और जनता के हित का स्वाँग भरकर अब तक अपना व्यवसाय चलाती रही है।" प्रेमचंद के उपन्यासों में जो राजनीतिक चिंतन पात्रों के माध्यम से सामने आया है वह आज की राजनीति पर अधिक ठीक बैठता है। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर राजनीति के स्तंभों पर कुठाराघात करते हुए राजनीति के अंत को सर्वश्रेष्ठ राजनीति बताता है। प्रेमचंद सत्ता का चरित्र उजागर करते हुए लिखते हैं कि-"राजनीति भी संसार की उन महत्त्व-पूर्ण वस्तुओं में है, जो विश्लेषण और विवेचना की आँच नहीं सह सकती। उसका विवेचन उसके लिए घातक है, उस पर अज्ञान का परदा रहना ही अच्छा है। प्रभु सेवक ने परदा उठा दिया-सेनाओं के प्रभाव आँखों से अदृश्य हो गये, न्यायालय के विशाल भवन जमीन पर गिर पड़े, प्रभुत्व और ऐश्वर्य के चिह्न मिटने लगे, सामने मोटे और उज्ज्वल अक्षरों में लिखा हुआ था-"सर्वोत्तम राजनीति राजनीति का अंत है।" लेकिन ज्यों ही उनके मुख से ये शब्द निकले- "हमारा देश राजनीति-शून्य है। परवशता और आज्ञाकारिता में सीमाओं का अंतर है।" त्यों ही सामने से पिस्तौल छूटने की आवाज आई, और गोली प्रभु सेवक के कान के पास से निकलकर पीछे की ओर दीवार में लगी।" पात्रों की बातों और घटनाक्रम दोनों के द्वारा प्रभावी ढंग से सामने आने वाला सत्ता का क्रूर चरित्र वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था का रूप दिखानेवाला है।

साहित्य और पत्रकारिता को सत्ता और पूँजीपति दोनों से अत्यधिक खतरा है। प्रेमचंद ने इस खतरे को पहचाना था। रामविलास शर्मा लिखते हैं कि- "पग-पग पर उन्हें अनुभव हुआ कि इस समाज में लेखक स्वाधीन नहीं है, उसे कलम बेचकर अनैतिक रचनाओं से पूँजीपतियों के मुनाफे का साधन बनना पड़ता है।" गोदान में समाचार पत्र बिजली का संपादक ओंकारनाथ को राय साहब खरीदने में सफल होते हैं। हमारे समय के सैंकड़ों समाचार-पत्रों तथा टीवी चैनलों पर भी कुछ मीडिया हाउसों ने कब्जा कर लिया है। ये पूंजी और सत्ता के गठजोड़ से पनपते हैं तथा जनता में भ्रामक यथार्थ का निर्माण करने में संलग्न रहते हैं। प्रेमचंद इस सत्ता और पूंजी के खिलाफ साहित्यकारों को आगे आने का तथा सच्चाई की मशाल दिखाने का आह्वान करते हैं। प्रगतिशील संघ के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि-"साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरञ्जन का सामान जुटाना नही है-उसका दरजा इतना न गिराइये। वह देश-भक्ति भार राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।" साहित्यकार का यह उत्तरदायित्व हमारे समय में भी उम्मीद की किरण बन सकता है।

प्रेमचंद का किसान जीवन का बारीक निरीक्षण उनके समय के किसानों को तो हमारे सामने जीवंत करता ही है वह आज के किसानों की समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान तलाशने का भी उपयोगी साधन है। 'कर्मभूमि' में देहातों की आर्थिक दशा की जाँच-पड़ताल करने निकले सलीम, अमरकान्त, डॉ. शान्तिकुमार के पारस्परिक संवाद के जरिए प्रेमचंद ने किसानों की दुर्दशा से परिचय कराया है-

"अमर ने कहा-मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।

सलीम बोला-तालाब के किनारे वह जो चार-पाँच घर मल्लाहों के थे, उनमें तो लोहे के दो एक बरतनों के सिवा कुछ था ही नहीं। मैं समझता था देहातियों के पास अनाज को बखारें भरी होंगी; लेकिन यहाँ तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे।

शान्तिकुमार बोले- सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसान के घर में बखार भी होती है; लेकिन ऐसे किसान गांव में दो-चार से ज्यादा नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया-मुझे तो इन गांवों में एक भी ऐसा किसान न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं ग़रीबों को चूसते हैं? मैं कहता हूँ, उन लोगों को इन बेचारों पर दया भी नहीं आती!

शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा-दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हलके पड़े! अब तो न्याय परीक्षा का युग है।"

कर्मभूमि के लेखन के नौ दशकों बाद आजाद भारत में भी किसान अपनी बदहाली से आत्महत्या करने की हद तक परेशान हैं। कृषि एवं कल्याण मंत्रालय द्वारा 'पीएम-किसान सम्मान निधि' जैसी शुरु की गई योजनाएँ भी उनकी दशा बदलने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं। आज भी किसान अपनी फसल को औने-पौने दाम पर बेचने के लिए विवश है। १८ जुलाई २०२० में 'अमर उजाला' में छपी एक खबर के अनुसार-"अधिकारियों ने बताया कि जिन किसानों को अभी तक इस स्कीम का लाभ नहीं मिला है या तो उनके बैंक खाते या आधार कार्ड में कुछ गड़बड़ी है या फिर उनका आधार कार्ड लिंक नहीं है।" ये खबरें सरकारी योजनाओं की वास्तविकता दिखाते हैं। किसानों की आत्महत्याएं १९९० ई. से २०२० ई. तक निरंतर जारी है। २०१५ में खरगोन ज़िले के मोहनपुरा गांव के लाल सिंह भिलाला ने ट्यूबवेल में पैसे कम पड़ जाने पर अपने बेटों को गिर्वी रख दिया। इसके कारणों पर बात करते हुए उसने बताया कि-"मिर्च की फसल के पहले 60 हज़ार का कर्ज़ लिया था. पहले मिर्च बाद में गेंहू की फसल भी बर्बाद हो गई." बढ़ते कर्ज से परेशान किसान लगातार यह मांग कर रहे हैं कि उनकी फसलों का उचित मूल्य दिया जाए,उनके कर्ज माफ किए जाएं,उनकी फसलों का बीमा किया जाए साथ ही बीज, सिंचाईजैसी सुविधाएं उन्हें मुहैया कराई जाएँ। लगता है कि गोदान का होरी २१ वीं सदी में भी किसान से मजदूर होकर मरने को अभिशप्त है। यह अकारण नहीं है कि गोदान आज के किसानों के जीवन की भी महागाथा बन गई है।

प्रेमचंद ने 'गोदान', 'पूस की रात' आदि रचनाओं में दिखाया था कि मुश्किल होते किसान जीवन ने किसानों को मजदूर बनने को मजबूर कर दिया है। हमारे समय में गाँवों से किसानों के मजदूर बनकर शहरों की ओर पलायन करने की प्रक्रिया निरंतर जारी है। ऐसी खेती भी किस काम की जिससे रात-दिन मेहनत करने पर भी तन को जाड़े से बचाने के लिए कंबल तक नसीब न हो सके। महाजनों के ताने सुनो वो अलग। 'गोदान' का गोबर भी किसानी छोड़कर मजदूरी करने लगता है। अब जमींदार और महाजन नहीं हैं। उनका स्थान बड़ी कंपनियों और बैंकों ने ले लिया है। हमारे समय का किसान उसी दुर्दशा में है क्योंकि कानून का रूप और शोषकों का चरित्र वैसा ही है जैसा कि १९३६ के गोदान में झींगुरी सिंह के मुँह से प्रेमचंद ने कहलवाया था। उस महाजन ने अपने व्यवसाय के प्रति निश्चिंत होते हुए कहा था कि- "कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी काश्तकार के साथ सख्ती न करे; मगर होता क्या है। रोज़ ही देखते हो। जमींदार मुसक बँधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है।"

हमारे समय में विद्यमान कंपनियों में मैनेजर, सुपरवाइजर किसी महाजन या जमींदार से कम नहीं है। कड़ाई से काम लेना और कम मेहनताना देना यही उनके स्वभाव का एक अंग है। इसलिए किसानों की ही तरह मजदूरों की वास्तविक स्थिति भी प्रेमचंद के युग की ही तरह नहीं बदली है। धोती-कुर्ता की जगह आज पैंट-शर्ट ने ले ली है, हाथ में औजारों की जगह कंप्यूटर, कान में हैडफोन आ गया है किंतु उनकी जीवन की दसा, घर, परिवार की स्थिति आदि कुछ नहीं बदला है। यूँ तो ये आधुनिक लगने वाले मजदूर हैं किंतु वास्तव में ये मजदूर ही हैं।

कोरोना काल में मजदूर सबसे प्रभावित तबका है। उसे रोटी की चिंता ने पुनः विस्थापित कर दिया है। यातायात साधनों के अभाव में सैकड़ों मीलों की दूरी पैदल करने पर वह विवश है। सड़क से आवागमन पर रोक के बाद रेल की पटरियों पर और नदी में मार्ग बनाता हुआ यह वर्ग अपने घरों में लौट जाने को विवश हो गया। भारत में लगे लॉकडाउन के कारण देश के विभिन्न राज्यों में विस्थापन की कई घटनाएँ सुनने को मिलीं। मजदूर प्रेमचंद की ताकत थे जिसके बल पर सत्ता तक पलटी जा सकती है। मजदूरों से प्रेमचंद का किस हद तक जुड़ाव था यह शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' में स्पष्ट किया है इसे रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं कि-"उन्होंने शिवरानी देवी जी से कहा था कि हर जगह शहज़ोर कमज़ोर को चूसते हैं, "हाँ, रूस है, जहाँ पर कि बड़ों को मार-मारकर दुरुस्त कर दिया गया, अब वहाँ गरीबों का आनंद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों के बाद रूस जैसा ही हो।" जब पत्नी ने पूछा कि क्रांति हुई तो वे किसका साथ देंगे, तब प्रेमचंद ने उत्तर दिया, "मज़दूरों और काश्तकारों का। मैं पहले ही सबसे कह दूँगा कि मैं तो मज़दूर हूँ। तुम फावड़ा चलाते हो, मैं कलम चलाता हूँ। हम दोनों बराबर हैं।" इसी चेतना की कलम से उन्होंने 'पूस की रात' से लेकर 'कफ़न' तक की यात्रा तय की थी। जिस हल्कू के पास रात-दिन मेहनत करने पर भी पूस की कड़ाके की ठंड से बचने के लिए एक कंबल तक न था उसके जैसे ही मजदूर ने कफ़न देने के सामाजिक मूल्य तक की उपेक्षा कर दी।

सामाजिक भेदभाव की समस्या भी प्रेमचंद को हमारे समय से जोड़ती है। हमारा समय यूँ तो आधुनिक कहलाता है किंतु अस्पृश्यता या भेदभाव के बदले रूपों से अब तक ग्रस्त है। आज भी कहीं-न-कहीं 'ठाकुर का कुआँ' अपने वजूद में हैं। आज भी कहीं-न-कहीं गंगी यह सोचने पर मजबूर है कि- "हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं! यहाँ तो जितने हैं, एक-से-एक छटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमे ये करें। अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गढ़रिये की एक भेड़ चुरा ली थी और बाद को मारकर खा गया। इन्हीं पण्डितजी के घर में तो बारहों मास जूआ होता है। यही बाबूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी

मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे। हाँ, मुंह से हमसे ऊँचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे! कभी गांव में आ जाती हूँ; तो रस-भरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।" अनुभव किया जाए तो आज भी कहीं-न-कहीं कोई जोखू मैला-गंदा, बदबूदार पानी पीने को विवश है क्योंकि उसे अपने समय और समाज की पूरी पहचान है। हमारा समय मन नहीं अपितु तन से आधुनिक है, बोली से आधुनिक है। मन तो आज भी वहीं रमा है जहाँ कोई जाति के कारण तो कोई धन के कारण, कोई रूप के कारण तो कोई प्रदर्शन के बल पर ऊंचा बना बैठा है।

भ्रष्टाचार हमारे और प्रेमचंद के समय की बड़ी समस्या है जो समय बदलने के साथ कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ता ही गया। भारत में विमुद्रीकरण होने पर करोड़ों रुपये नदियों में बहाए गए, कूड़े के ढेर में फेंके गए। क्योंकि उस दौरान पुरानी मुद्रा का स्वरूप पूर्णतः बदल दिया गया था तथा पुरानी मुद्रा का उपयोग बंद कर दिया गया था। किंतु विमुद्रीकरण लागू होने के कुछ ही समय के बाद बाजारों से २००० के नोट सिरे से गायब हो गए। यह कहना मुश्किल नहीं है कि भ्रष्टाचार कम होने के बजाय और अधिक बढ़ा है। ऐसे भ्रष्ट लोगों का असल चेहरा प्रेमचंद की 'कफ़न' कहानी में भी देखा जा सकता है। घीसू-माधव समाज का वह तबका है जो इस समाज में रह रहे शरीफों की रग-रग से परिचित है। इसीलिए वे दोनों बुधिया को बैकुंठ जाने का हकदार समझते हैं न कि इस समाज के भ्रष्ट लोगों को। घीसू माधव से कहता है कि-"वह न बैकुण्ठ जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?"

प्रेमचंद की हिंदी भाषा और साहित्य को वैश्विक उच्चता के स्तर पर ले जाने की आकांक्षा भी उन्हें हमारे समय के लिए प्रासंगिक बनाती है। एक प्रेमचंद का दौर था जब हिंदी आंदोलन की भाषा थी दूसरा हमारा समय है जिसके केंद्र में अंग्रेजी रच-बस गई है। आज बहुत से लोग न तो शुद्ध हिंदी बोल पाते हैं न पूर्णतः अंग्रेजी। ऐसे में हम हिंग्लिश भाषी बनकर रह गए हैं। प्रेमचंद को लगता था कि-"जब हिन्दुस्तानी कौमी जबान है, क्योकि किसी न किसी रूप मे यह पन्द्रह-सोलह करोड़ आदमियों की भाषा है, तो यह भी जरूरी है कि हिन्दुस्तानी जबान में ही हमें भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ पढ़ने को मिले।" किंतु आज कुछ भी पढ़ने के लिए अंग्रेजी पहले छानी जाती है। भाषा संबंधी समस्या ने आज के युवाओं को अवसाद के गर्त में पटक दिया है जहाँ उनका आत्मविश्वास छिन्न-भिन्न हो गया है। भाषा संबंधी संघर्ष प्रेमचंद के साथ हमारे समय की भी जरूरत है। हमारे समय के लोग अनेक स्तरों पर इस कार्य में संलग्न है। विभिन्न मोबाइल ऐप में हिंदी भाषा की सुविधा दी जा रही है। विज्ञापन अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी में भी छापे जा रहे हैं। यहाँ तक कि ऑन-लाइन कोश भी उपलब्ध है। खरीदारी संबंधी वेबसाइट अमेज़न, बिग-बास्केट, पेटीएम, आदि पर अपनी ही भाषा में कार्य करने का विकल्प उपलब्ध कराया जा रहा है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रेमचंद अपने समय से गहराई से जुड़े साहित्यकार थे। इस गहरे जुड़ाव ने उन्हें हमारे समय के लिए प्रासंगिक बना दिया है। चाहे किसानों की समस्या हो या मजदूरों की, चाहे स्त्रियों के साथ बरता जाने वाला भेदभाव हो चाहे दलितों के साथ, चाहे साम्राज्यवाद के विरुद्ध आंदोलन हो या पूँजीवाद के विरुद्ध, चाहे अभिव्यक्ति की आजादी का प्रश्न हो या स्वतंत्रता का प्रेमचंद साहित्य अपने दौर के साहित्य निर्माता होने के साथ ही हमारे दौर के भी साहित्य निर्माता हैं। उनकी कालजीविता उन्हें कालजयी बना गई है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *एक 'बहादुर' लड़की ने बदला सिस्टम-नरेन्द्र नाथ, नवभारत टाइम्स*. (२०१३ , दिसंबर १६). Retrieved १२ ११, २०२०
2. *चेन्नई: कोरोना वायरस से जान गंवाने वाले डॉक्टर का अंतिम संस्कार स्थानीय लोगों ने रोका-द वायर*. (2020, 4 14). Retrieved ११ २५, २०२०
3. S, M. (2008, october 15). *Flu experts warn of need for pandemic plans*. Retrieved from BMJ. 321 (7265): 852. doi:10.1136/bmj.321.7265.852. PMC 1118673. PMID 11021855.
4. उजाला, अ. (२०२०, मई १७). *'लॉकडाउन:जान जोखिम में डाल यमुना पार कर रहे मजदूर, पुलिस ने यूपी की सीमा में घुसने से रोका'*.
5. गोयनका, क. क. (१९८१).*प्रेमचंद विश्वकोश*.प्रभात प्रकाशन, दिल्ली.
6. चतुर्वेदी, र. (२०१५, ४ २३).*फसल बर्बाद हुई तो बच्चे गिरवी रख दिए', बीबीसी हिंदी*.
7. प्रेमचंद. (१९२९).*पाँच फूल*.बनारस: सरस्वती-प्रेस.
8. प्रेमचंद. (१९३२).*कर्मभूमि*.इलाहाबाद: हंस प्रकाशन.
9. प्रेमचंद. (१९३८).*सप्तसरोज*.काशी: हिंदी पुस्तक एजेंसी.
10. प्रेमचंद. (१९५४).*साहित्य का उद्देश्य*.इलाहाबाद: हंस प्रकाशन.
11. प्रेमचंद. (१९५४).*साहित्य का उद्देश्य*.इलाहाबाद: हंस प्रकाशन.
12. प्रेमचंद. (१९८०). *प्रेमचंद रचनावली*.नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.
13. प्रेमचंद. (२००८).*गोदान*.वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
14. प्रेमचंद. (२००८).*प्रेमचंद के विचार १, २, ३,* .प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली.
15. प्रेमचंद. (२००८).*प्रेमाश्रम*.सुमित्राप्रकाशन इलाहाबाद.
16. प्रेमचंद. (२००९).*गबन*.प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली.
17. प्रेमचन्द. (१९४७).*मानसरोवर, भाग:१*.बनारस: सरस्वती प्रेस.
18. मिश्र, अ. (१९९५). *राजस्थान की रजत बूंदें*.नई दिल्ली: गांधी शांति प्रतिष्ठान.
19. शर्मा, र. (२००८).*प्रेमचंद और उनका युग*.नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.